बाहर के बिना

जेन साही

टैगोर से पूछा गया कि उन्होंने स्कूल क्यों खोला। उनका जवाब था कि अपने संक्षिप्त स्कूली अनुभव की उनकी दुखद यादें एक ऐसी जगह की थीं जहाँ उन्हें ऊँची खिड़कियों, बेंचों की लम्बी कतारों और खाली दीवारों वाले एक कमरे तक सीमित कर दिया जाता था। जब वे यह याद करते तो उनके मन में प्रबल इच्छा पैदा होती कि वे बच्चों को आजादी का एहसास और प्रकृति का अनुभव हासिल करने का मौका दे पाएँ।[1] स्कूल अकसर भौतिक और मानसिक, दोनों स्तरों पर सीमित–संकुचित से स्थान होते हैं जहाँ कल्पना को उत्साहित–प्रेरित करने या शरीर को हरकत में लाने के लिए कोई विशेष उत्प्रेरक मौजूद नहीं होते। घर और गाँव की दुनिया कक्षा के कमरे की बन्द, भीड़दार, गैर–दोस्ताना जगह से बिल्कुल अलग होती है।

एक स्कूल में प्रकट और कम प्रकट तत्वों की कई परतें परस्पर निर्वाह की स्थिति में रहती हैं – इनमें स्वयं इमारत का ढाँचा और भौतिक वातावरण; अपने–अपने विशेष अनुभव और संवेदनशीलता लिए हुए बच्चे और शिक्षक; घर और समुदाय के बिल्कुल आसपास की भाषा, इतिहास और अपेक्षाएँ; तथा उससे भी आगे सम्भावनाओं और सीमाओं का व्यापक संसार शामिल हैं।

मानव शरीर की ही तरह स्कूल में भी एक खास तरह की नाज़ुकता और लचीलापन, दोनों होते हैं। वह एक–दूसरे से जुड़ी, अन्तर्सम्बद्ध कई व्यवस्थाओं पर निर्भर रहता है और एक बहुत ही पतली ऊपरी परत उसके भीतर और बाहर को अलग करती है। इतालवी लेखक प्रिमो लेवी बात करते हैं उस "पर्यावरण व्यवस्था" की "जो, मुझे पता भी नहीं चलता और मेरे अस्तित्व की गहराइयों में बैठा देती है मृत जैविक पदार्थ का भोग करने वाले जीव, रात और दिन के पक्षी, बेलें, तितलियाँ, झींगुर और फफूंद।"[2] टैगोर ने पर्यावरण–विज्ञान की भाषा का प्रयोग तो नहीं किया लेकिन उनमें शिक्षा की प्रक्रिया की अनुभूति मौजूद थी – और यह प्रक्रिया है प्राकृतिक संसार और सम्पूर्ण मानवता के साथ एक होने के बढ़ते एहसास की प्रक्रिया।

चालीस साल पहले जब मैं पहले–पहल बेंगलूरु के बाहरी इलाके में स्थित गाँव सिल्वेपुरा में आई तो गाँव के अधिकतर बच्चे स्कूल नहीं जाते थे। मगर मैंने पाया कि हमारा मकान बनाने वाले राज मिस्त्री, मजदूरों और बढ़ई का काम करने वालों के बच्चे स्कूल जाने की तीव्र इच्छा रखते थे। मैं सोच में थी कि कहीं इन बच्चों के लिए स्कूल का अर्थ बन्द और शोर भरी जगहों तक सीमित होकर तो नहीं रह जाएगा। यह घरों से अन्दर–बाहर आने–जाने की उनकी आजादी और कुछ हद तक गाँव के भीतर–बाहर की आजादी से बहुत अलग बात लगती थी।

इसीलिए स्कूल को ऐसा बनाया गया कि अन्दर–बाहर आजादी से आया–जाया जा सके। दोनों को सीखने–सिखाने के लिए सम्भावनाओं से परिपूर्ण जगहों के रूप में देखा गया।

---

[1] Rabindranath Tagore, 'My School' in *Personality* pp.119-120. 2002 Edition. New Delhi: Rupa.

[2] Primo Levi, (1981) *The Search for Roots.* p.5. Translated by Peter Forbes (2001), Penguin Books.



यह तो तय है कि एक स्कूल तथा उसकी इमारतों की बुनावट और दृश्य बच्चे और संसार के बीच के रिश्ते को अभिव्यक्त करते हैं। सम्भव है कि टैगोर की यादों में यह अजनबी और प्रतिकूल वातावरण के रूप में रहा हो, लेकिन यही जगह काम करने और खेलने की सम्भावनाओं से पूर्ण, आकर्षण का स्थान भी हो सकती है। हम जानते–समझते हुए बाहर के बरामदों, आँगनों, नीची दीवारों, 'जालियों' आदि को अन्दर की जगह के साथ एकीकृत करते हुए एक ऐसे स्थान की रचना कर सकते हैं कि अन्दर का हिस्सा बाहर से अलग–थलग और कटा न रहे। दीवारों को ढकने के लिए बेलें उगाई जा सकती हैं – इन्हीं बेलों के चलते खेलने या काम करने के लिए छायादार जगह भी मिलेगी। वह चाहे किताबें हों चाहे खेल, चीजें पहुँच के दायरे में रखी जा सकती हैं। दिलचस्पी और सुन्दरता के क्षेत्रों को रचने में बच्चे योगदान दे सकते हैं। नंगी दीवारों को नया रूप दिया जा सकता है – किसी पक्के किस्म के अपरिवर्तनीय प्रिंट से सजा कर नहीं बल्कि उन्हें ऐसे गतिशील, लचीले स्थान बनाकर जहाँ बच्चों के लेखन और चित्रों को प्रदर्शित किया जा सके।

क्या एक बहुत तेजी से बदल रहे समाज में बच्चों के बढ़ने और सीखने के लिए एक स्वस्थ वातावरण रचने हेतु आवश्यक तत्वों को चिह्नित किया जा सकता है? स्कूलों की पुरानी इमारतों का स्थान नई इमारतें ले रही हैं जिनमें अकसर महँगी और टिकाऊ सामग्री का प्रयोग होता है लेकिन जरूरी नहीं है कि यह सामग्री अधिक सुन्दर या कल्याण की दृष्टि से अनुकूल और उपयोगी ही हो। यह एक चुनौती है कि ऐसे डिजाइन विकसित किए जाएँ जिनमें नई सामग्री समेत ऐसी चीजों को प्रयोग किया जाए जो सस्ती और व्यावहारिक तो हों ही, बढ़ते–विकसित होते बच्चों की आवश्यकताओं को भी पूरा कर पाएँ।

ग्रामीण परिवेश के स्कूलों में पेड़ों, बड़े–बड़े पत्थरों और खुली जगह का लाभ मिलता है हालाँकि बहुत बार हम इनके मूल्य और महत्त्व को समझ नहीं पाते हैं। हाल में हुए शोध से यह बात निकलकर आई है कि बच्चे कृत्रिम, स्थाई किस्म के खेल–मैदानों को बहुत खुशी से स्वीकार नहीं करते, फिर वे चाहे बेहतरीन सुख–सुविधा से भी लैस क्यों न हों। बल्कि वे किसी वयस्क की नजर और नियन्त्रण से दूर, लचीले, निजी, जंगलनुमा स्थानों को पसन्द करते हैं जिन्हें वे स्वयं शक्ल दे पाएँ, बदल पाएँ और जिनके लिए वे जिम्मेदार महसूस कर पाएँ।[3] आशा के प्रतिकूल सच यह है कि अकसर आर्थिक तौर पर साधन–सम्पन्न बच्चे अधिक संकीर्ण और सीमाबद्ध जीवन जीते हैं क्योंकि उनके घर और स्कूल, दोनों जगह का वातावरण बहुत नियन्त्रित होता है।

बच्चों को ऐसा स्थान मिलना आवश्यक है जहाँ उनके पास अपने ही रिश्ते–नाते तलाशने और बनाने की गुंजाइश रहे, जहाँ उनका संसार किसी एक विशेष खाने और साँचे में न बँधा हो। लोरिस मलगज़ी एक अति–संस्थागत, अति–निर्धारित परिवेश के प्रभावों को बहुत अच्छे तरीके से सारगर्भित करते हैं :

> वे बच्चे से कहते हैं:
> काम और खेल
> यथार्थ और स्वप्नचित्र
> विज्ञान और कल्पना
> धरती और आकाश
> एक साथ नहीं हैं।[4]

स्कूल का वातावरण अपने आप में एक पूरा संसार होता है जहाँ सीखने की बुनियाद भौतिक, इन्द्रीय यथार्थ में होनी चाहिए जिसके साथ बच्चे सोच के स्तर पर, व्यावहारिकता में और कल्पनाशीलता के साथ सम्बन्ध बना सकें।

[3] Johnson, L.M. (1988) 'The Brook Knolls Cooperative Community: A case study for resident design of public open space', in *Landscape and Urban Planning*, 17, 283-295.See also article by the same author (Johnson), American Playgrounds and Schoolyards – A Time for Change.

[4] Loris Malaguzzi, Hundred Languages of Children: The Reggio Emilia Approach to Early Childhood Education, L. Gandini (ed.). 1998 edition, Elsevier Science

बच्चों को प्रोत्साहित किया जा सकता है कि वे काम, खेल और अध्ययन के जरिए विभिन्न तरह से अपने आसपास के वातावरण के साथ एक सक्रिय सम्बन्ध बनाएँ, बल्कि उसका ध्यान भी रखें। उदाहरण के लिए, जिस स्कूल में मैं काम करती हूँ, बच्चे प्रतिदिन सुबह मुख्य कमरे के बीचोबीच घर या बगीचे से लाई गई चीजों से एक मण्डप बनाते हैं। घास, बीजों, फूलों और पत्तों के डिजाइन हमेशा एक से नहीं होते – वे मौसम तथा बच्चों के चुनाव और प्रतिभा को प्रतिबिम्बित करते हैं। इस गतिविधि के चलते बच्चे प्राकृतिक संसार के परिवर्तनों से तो अवगत होते ही हैं, वे पैटर्न, आकार–प्रकार में समता, रूप–रंग और गठन–बुनावट के बारे में भी सीखते हैं।

सीखने के लिए बगीचा एक समृद्ध संसाधन बन जाता है क्योंकि बच्चे वहाँ खेलते ही नहीं, उसकी देख–रेख भी करते हैं। मसलन, वे बीज की थोड़ी उठी हुई क्यारी के फायदों की तुलना बुआई के अन्य तरीकों के साथ कर सकते हैं या जैविक कूड़े को अलग करके तथा वानस्पतिक खाद बनाकर सीख सकते हैं कि क्या–क्या वस्तुएँ स्वाभाविक तौर पर सड़नशील होती हैं। बच्चे अपने आसपास की प्रकृति में हो रहे विकास तथा क्षय सम्बन्धी परिवर्तनों का अवलोकन और उनका रिकॉर्ड रख सकते हैं – अचानक बारिश होने पर काई का निकल आना, घोंघे की अब से पहले न देखी गई किसी किस्म का दिखाई दे जाना, या यह देखना कि कितनी लम्बी देर के लिए मकड़ी का एक बहुत बड़ा जाला बना रह सकता है – इन सब बातों के चलते बाहर का क्षेत्र सीखने का एक समृद्ध संसाधन बन जाता है।



आवश्यकता यह भी है कि स्कूल बच्चों के उस जीवन के साथ सम्बद्ध हो पाए जो स्कूल के बाहर है। स्कूल में बच्चों की शारीरिक उपस्थिति ही नहीं होती; वे अपने साथ बाहर से हासिल किए गए कितने ही विचार, अनुभव और अनुभूतियाँ लेकर आते हैं। बच्चों को समाचारों के स्वयं चुनाव का मौका मिलना चाहिए और इसका एक तरीका है कि उन्हें डायरी–लेखन का समय मिले। वे चित्र बना सकते हैं, महत्त्वपूर्ण घटनाओं के बारे में लिख सकते हैं या लिखवा सकते हैं। किसी वयस्क को ये घटनाएँ बहुत ही छोटी और महत्त्वहीन लग सकती हैं लेकिन घर में हुआ कोई झगड़ा, नए खरीदे कपड़े, पिल्लों का जन्म, एक तोड़ दिया गया वायदा, डॉक्टर से मुलाकात या एक बस–यात्रा बच्चे के दिमाग पर अंकित होने लायक घटनाएँ हैं। प्रारम्भ से ही भाषा का प्रयोग अनुभवों को साझा करने, अभिव्यक्त करने और विस्तार देने के लिए होना चाहिए।

गाँव और घर के बिल्कुल आसपास का वातावरण बच्चे के सीखने के लिए एक समृद्ध 'पाठ' है। शिक्षण की शुरुआत उन बातों से करते हुए जिनसे बच्चे पहले से अवगत हैं, जिनके साथ वे सहज हैं, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र तथा विज्ञान के संसार उनके लिए खोले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, इतिहास की कक्षा में बच्चों से कहा गया कि वे अपने घर से अपनी दिलचस्पी की कोई एक वस्तु चुनें। चुनी गई वस्तुओं में दरवाजे की चौखट, बन्दूक, सिलाई मशीन और बिना धुएँ का 'चूल्हा' थे। बच्चों ने इन वस्तुओं के बारे में चर्चा की और मिलकर उन वस्तुओं से सम्बन्धित ऐसे प्रश्नों की सूची बनाई जिनके बारे में वे जानना चाहते थे। कई हैरान करने वाले प्रश्न थे, जैसे – "क्या भूतों को बन्दूक से मारा जा सकता है?" दूसरी ओर परम्परागत किस्म के सवाल भी थे – जैसे, ये वस्तुएँ कितनी पुरानी हैं, किस सामग्री से बनी हैं और इनका प्रयोग–उपयोग क्या है। इस गतिविधि ने बच्चों के लिए तथ्य मुहैया करवाए जिससे वे एक समयरेखा बना पाए और भूतकाल का एहसास जगाते हुए जान पाए कि खोजी गई नई सामग्री तथा तकनॉलाजी के नए रूपों के चलते किस प्रकार चीजें बदल गईं।

बच्चे अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन की बातों पर ध्यान देने से शुरुआत कर सकते हैं : मकान किस सामग्री से बना है, वे कैसे कपड़े पहनते हैं, इलाज के लिए क्या कुछ लिया जाता है, वे कैसा भोजन करते हैं। उन्हें स्वयं ही बहुत जल्दी स्पष्ट हो जाता है कि कई बाहरी ताकतें चुनाव और सम्भावनाओं को प्रभावित करती हैं।

सामाजिक अध्ययन का तकाजा है कि हम अपने बीते समय का रूमानीकरण न करें और न ही अपने वर्तमान को बहुत साफ–स्वच्छ–पवित्र रूप में प्रस्तुत करें बल्कि वर्तमान की अनिश्चितताओं और चुनौतियों के साथ जूझने

की कोशिश करें। आसपास के समुदायों में पिछले 10 सालों में जीवन की शैली और गति निर्णायक तौर पर बदल गई है। समुदाय संघर्षरत हैं कि वे सरपट दौड़ते शहरीकरण के मुताबिक स्वयं को ढाल पाएँ। पारिवारिक जीवन के पैटर्न, शिशु–देखभाल की शैलियाँ, मर्द और औरत दोनों के पेशे, खान–पान के तौर–तरीके, टकराव और द्वंद्व को सुलझाने के तरीके तथा मनोरंजन के साधन, सब संक्रमण के दौर में हैं। आस–पड़ोस कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था से अर्ध–शहरी परिवेश में परिवर्तित हो रहा है जो अपने साथ समस्याएँ और लाभ दोनों लाता है।

ये परिवर्तन हम सबके लिए सवाल खड़े करते हैं और बच्चे इस बात के बारे में बहुत जागरूक हैं कि ये उथल–पुथल किस प्रकार उनके जीवन को प्रभावित कर रही है। कचरे को ठिकाने लगाने की बढ़ती समस्या, पानी की जबरदस्त किल्लत या स्थानीय पुलिस की बढ़ती ताकत ऐसे मुद्दे हैं जिनसे सम्बोधित होना बहुत आवश्यक हो गया है – चर्चा और सोच–विचार के स्तर पर भी और विकल्पों के बारे में कल्पना करने के सन्दर्भ में भी।

बच्चे अपने सामने के परिदृश्य में आए बड़े परिवर्तनों का अध्ययन करके अपने गाँव के भविष्य और उसमें अपनी भूमिका के बारे में सोचना शुरू कर सकते हैं। किस प्रकार खेतों का स्थान मकानों के लिए कटे प्लॉटों ने ले लिया है या कैसे तालाब गायब हो गए हैं और उनके स्थान पर ईंटों के भट्टे नजर आने लगे हैं या किस प्रकार खुले कुएँ सूख चुके हैं और मुँह बाए गड्ढे की शक्ल इख्तियार कर चुके हैं।

जैसा कि कहा ही जा चुका है, स्कूल का वातावरण कई परतों से मिलकर बनता है – कुछ स्पष्ट दिखाई देती हैं, कुछ छुपी रहती हैं, और कुछ बहुत हल्के–फुल्के–प्रछन्न रूप में मौजूद। स्कूल का भौतिक वातावरण और उसके आसपास का माहौल इसका एक आयाम है। एक और आयाम है जिसे शायद कोई नाम दे पाना या चिह्नित कर पाना मुश्किल है – उसके विशिष्ट गुणों से निर्मित उसका 'स्वभाव'। सम्बन्ध और भूमिकाएँ किस प्रकार व्यावहारिक रूप लेते हैं, सीखने–सिखाने के प्रति दृष्टिकोण किस तरह स्पष्ट होते हैं, एक–दूसरे के प्रति दायित्वबोध और ध्यान रखने की भावना तथा स्कूल में प्रयुक्त सामग्री किस प्रकार व्यावहारिक इस्तेमाल में आ रहे हैं – इन सब बातों में स्कूल का यह 'स्वभाव' दृश्यमान होता है। क्या स्कूल का वातावरण और 'स्वभाव' दबाव, नियन्त्रण तथा बोरियत को प्रतिबिम्बित करता है या यह एक ऐसा स्थान है जहाँ नए विचारों की खोज के लिए खुलापन और आजादी है?

एक स्कूल के स्वभाव या चरित्र का एक हिस्सा शब्दों के प्रयोग के तरीके में झलकता है – कौन किससे उनका प्रयोग कर रहा है, और उन शब्दों का प्रयोग हो ही क्यों रहा है? क्या बच्चे उन शब्दों के साथ सम्बन्ध बना पाते हैं जिन्हें वे सुन, पढ़ और प्रयोग में ला रहे हैं?

शब्द में हो चाहे बिम्बों में, बच्चों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए समय और स्थान की आवश्यकता रहती है। तुरन्त उत्तर देने का दबाव किसी अन्य व्यक्ति के विचार या सूत्र को आत्मसात किए बिना केवल दोहराव या नकल–मात्र में परिवर्तित हो जाता है।



ब्रिटिश उपन्यासकार फ़िलिप पुलमन रचनात्मक प्रक्रिया की तुलना खुले समुद्र में रात के समय मछली पकड़ने की प्रक्रिया से करते हैं जिसके लिए समय, शान्ति, जोखिम और धैर्य की आवश्यकता होती है और उसके बावजूद नतीजों के बारे में कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं होता। वे उन निदेशात्मक तरीकों का रोना रोते हैं जिनका प्रयोग करते हुए शिक्षक बच्चों से विभिन्न तकनीकों के मुताबिक चलने की आशा रखते हैं और जिनका पूरा ध्यान केवल शैली पर ही होता है। तैयार किए गए पाठ या उत्पाद को कुछ विशेष मानक आवश्यकताओं की सूची के आधार पर परखा जाता है और फिर प्रभावशाली शिक्षण के सबूत के रूप में पेश किया जाता है।

एक बच्ची लोगों की बातचीत को सुनते हुए, उसमें हिस्सेदार होते हुए भाषा–प्रयोग सीखती है और फिर धीरे–धीरे अपनी बात को स्वर देने और उसे साझा करने तक पहुँचती है। इसी प्रकार सदृश्य भाषा को जाँचते–परखते और उसकी समझ बनाते हुए वह चीजों के साथ अन्तःसम्बन्ध को अपनी बुनियाद बनाती है। कला मूलतः चीजें बनाने से सम्बद्ध नहीं है बल्कि इसका अधिक सम्बन्ध देखने, सुनने, सूंघने और छूने के बारे में सीखने से है। इसकी शुरुआत वस्तुओं, लोगों और सामग्री के साथ ग्रहणशील सम्बन्ध में होने से होती है।

जैसा कि पुलमन कहते हैं, कई मौकों पर हमें निरन्तर, बेरोक–टोक समय और स्थान की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, हम यह मानकर नहीं चल सकते कि सब बच्चों को किसी एक चित्र, गणित का सवाल या ज्यामिती की निर्मिति को पूरा करने के लिए एक समान मात्रा में समय चाहिए होता है। कम उम्र के बच्चे कई बार निरन्तर ध्यान केन्द्रित रखने की अपनी क्षमता से हमें हैरान कर सकते हैं।

हम अमूमन बच्चों को स्वायत्तता का एहसास नहीं दे पाते। स्थान, समय और विषयवस्तु मोटेतौर पर शिक्षक के हाथ में होते हैं – वही तय करता है कि किसे क्या और कितने समय के लिए करना है। तीन साल हुए हमने इस सोच के तहत एक छोटा सा प्रयोग शुरू किया कि बच्चों को कम से कम कुछ तो चुनाव का अवसर दिया जाए। सप्ताह में एक बार, प्रत्येक शुक्रवार को वे किसी न किसी गतिविधि का "स्वतन्त्र चुनाव" कर सकते हैं। गतिविधियों में नाटक, भोजन बनाना, पेपर फोल्डिंग, चित्रकला, पैटर्न–निर्माण, कम्प्यूटर–कला, ब्लॉक बनाना और मिट्टी के साथ काम शामिल हैं। बच्चे अपनी मर्जी से अकेले, जोड़े बनाकर या फिर समूहों में काम कर सकते हैं और जिसके भी साथ काम करना चाहते हैं, उस पर आयु की कोई बन्दिश नहीं होती। शिक्षकों का हस्तक्षेप न्यूनतम होता है लेकिन कक्षा के अन्त में बच्चे एक–दूसरे को अपना किया हुआ काम दिखाते हैं।

हो सकता है कि इस प्रकार की आजादी देना हर वक्त व्यावहारिक, सम्भव या इच्छा लायक न हो और कुछ क्षेत्रों में साफ–स्पष्ट निर्देश और नए ज्ञान के लिए मध्यस्थता आवश्यक हो, लेकिन स्कूल विभिन्न बच्चों की ऊर्जा,



सीखने की उनकी पसन्दीदा शैलियों और रुचियों के साथ काम करने का प्रयास कर सकता है, न कि उनके विरुद्ध।

स्कूल के वातावरण के सन्दर्भ में हम कई स्तरों के बारे में सोच सकते हैं। एक स्वस्थ वातावरण हम उसे कहेंगे जिसमें सम्पर्क–सम्बन्ध होते हैं – इमारत के भीतर और बाहर में सम्बन्ध; स्कूल के भीतर सीखने और उसकी हदों के बाहर के जीवन में सम्बन्ध; खुद के भीतर जो कुछ चल रहा है, उसके साथ सम्बन्ध बनाने की छूट; सोचने, सपने लेने और कल्पना करने की गुंजाइश; और इस सबको साझा कर पाने के लिए स्थान और समय का होना, तथा अपने चुनाव के आधार पर जो और जैसा चाहते हैं, कर पाने की सम्भावना। टैगोर का सपना एक ऐसा स्थान रच पाने का था जो सीखने का साझा स्थान हो, जहाँ मन की आन्तरिक हलचल और आसपास का प्राकृतिक संसार आजादी के साथ एक–दूसरे को रूप–आकार दे पाएँ, इक–दूजे को समृद्ध कर पाएँ। यह एक उत्तम विचार है जो हमें प्रेरित करता है कि हम वर्तमान की, यहाँ और अभी की, बदलती आवश्यकताओं को पूरा करते हुए एक अधिक सन्तुलित भविष्य के लिए तैयार हो पाएँ।

जेन साही अंशकालिक रूप में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु एवं टाटा इंस्टीटयूट ऑफ सोशल साइंसेस, मुम्बई से जुड़ी हुई हैं। वे बेंगलूरु के बाहरी हिस्से में स्थित एक अनौपचारिक विद्यालय सीता स्कूल में 1975 से कार्यरत हैं। हाल ही के दिनों में उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों में अपनी भागीदारी बढ़ाई है। उनसे jane.sahi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

